जनसत्ता



# हिंसा का चुनाव

इस बार पश्चिम बंगाल में शायद ही कोई चरण रहा हो, जिसमें हिंसक घटनाएं न हुई हों। बिहार में भी कई जगह हिंसक घटनाएं हुईं। नक्सल प्रभावित इलाकों में कई जगह हिंसा हुई। ओड़ीशा में एक मतदान दल पर नक्सली हमले में एक महिला मतदान अधिकारी को अपनी जान गंवानी पड़ी। छठे चरण के मतदान में भी पश्चिम बंगाल में छिटपुट हिंसा की घटनाएं हुईं। वहां भाजपा की महिला प्रत्याशी को एक मतदान केंद्र के बाहर धक्का मारा गया। बिहार में गोली चली। ये दोनों राज्य ऐसे हैं, जहां राजनीतिक हिंसा का इतिहास रहा है। वहां राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता कुछ अधिक सक्रिय और वैचारिक रूप से उत्तेजित देखे जाते हैं। सोए चुनाव प्रचार के दौरान उनमें हिंसक झड़पें आम बात है। हत्याएं तक हो जाती हैं। विचित्र है कि राजनीतिक दल इसे अपनी ताकत मानते हैं। यह समझना मुश्किल है कि जब चुनाव को लोकतंत्र के उत्सव के रूप में प्रचारित-प्रसारित और लोगों को अपने मताधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, तो राजनीतिक दल अपने कार्यकर्ताओं को यह समझाने में सफल क्यों नहीं हो पाते। क्या राजनीतिक दलों का यह धर्म नहीं कि वे अपने कार्यकर्ताओं को अनुशासन और लोकतंत्र की मयार्दा का पाठ पढ़ाएं।

यह छिपी बात नहीं है कि जबसे राजनीति में बाहुबल और धनबल का प्रवेश बढ़ा है, तब से चुनावों के समय हिंसक घटनाएं भी बढ़ी हैं। राजनीतिक पार्टियां दागी नेताओं से दूरी नहीं बना पातीं। यही वजह है कि हर बार चुनाव के बाद सदन में दागी नेताओं की संख्या कुछ बढ़ी हुई ही दर्ज होती है। बाहुबली नेताओं का प्रयास दबदबा कायम कर, मतदाताओं में दहशत पैदा कर और प्रतिपक्षी दलों को प्रचार-प्रचार से दूर रख कर कामयाबी हासिल करने का होता है। इसी तरह धनबल को मिले प्रश्रय का नतीजा यह है कि चुनाव के समय बड़े पैमाने पर नगदी, बहुमूल्य वस्तुएं, नशीले पदार्थ, यहां तक कि खतरनाक नशीली दवाएं बांटने का चलन बढ़ा है। इस बार छापेमारी में करोड़ों रुपए नगद और करोड़ों रुपए के नशीले पदार्थ बरामद किए गए। जाहिर है, जब ऐसी प्रवृत्ति के लोगों का राजनीति में प्रवेश बढ़ेगा और वे किसी भी तरीके से चुनाव जीत लेना ही अपनी उपलब्धि मानेंगे, तो राजनीतिक हिंसा का सिलसिला रोकना कठिन ही बना रहेगा। इस मामले में राजनीतिक दलों से स्वाभाविक अपेक्षा की जाती है कि वे लोकतांत्रिक मयार्दा का पालन करते हुए आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों से दूरी बनाएं।

चुनाव के समय हिंसा पर काबू न पाए जा सकने में निर्वाचन आयोग की भी भूमिका रेखांकित होती है। इस बार चुनाव को करीब दो महीने तक फैला दिया गया। पश्चिम बंगाल में हर चरण में कुछ-कुछ सीटों के लिए मतदान रखा गया। तर्क दिया गया कि इस तरह चुनावी हिंसा पर काबू पाया जा सकेगा। सुरक्षा कर्मियों को एक जगह से दूसरी जगह भेजने में आसानी होगी। इसके बावजूद अगर किसी प्रत्याशी की गाड़ी पर पत्थर मारे जा रहे हैं, किसी पर हमले हो रहे हैं, तो फिर आयोग की रणनीति कहां काम आई। शायद इस बात को समझने में उससे चूक हुई कि जब चुनाव को लंबे समय तक फैला दिया जाता है, तो इससे सुरक्षाबलों की तैनाती में तो आसानी होती है लेकिन शरारती तत्त्वों को एक से दूसरी जगह पहुंचने में मदद भी मिलती है।

# लाचारी और लापरवाही

आम्रपाली समूह की अधूरी परियोजनाओं को पूरा कराने के मामले में नोएडा और ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने हाथ खड़े कर दिए हैं। दोनों प्राधिकरणों ने सर्वोच्च न्यायालय में साफ कह दिया है कि वे इस काम को पूरा करवा पाने में सक्षम नहीं है। दोनों प्राधिकरणों का यह कदम उन बयालीस हजार लोगों के लिए बड़ा झटका है जिन्होंने आम्रपाली की परियोजनाओं में घर खरीदने के लिए पैसे लगाए थे। सर्वोच्च अदालत में दोनों प्राधिकरणों ने जिस तरह से अपनी लाचारी जाहिर की है, वह हैरान करने वाली है। ये दोनों प्राधिकरण उत्तर प्रदेश सरकार के निकाय हैं और इनका महत्त्व इसलिए भी ज्यादा है कि दिल्ली के पास दो बड़े नगर इन प्राधिकरणों के ही बसाए हुए हैं। आम्रपाली की परियोजनाएं भी इन्हीं की जमीन पर हैं और उस पर सारे कायदे-कानून भी इन्हीं के लागू होते हैं। ऐसे में सवाल तो यही उठता है कि अगर नोएडा और ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण भी हाथ झाड़ लेंगे तो बिल्डरों से धोखा खाए हुए निवेशक जाएंगे कहां?

सुप्रीम कोर्ट ने आठ मई को आम्रपाली समूह की सभी पंद्रह आवासीय संपत्तियां दोनों प्राधिकरणों को सौंपने की बात कही थी। जाहिर है, अदालत को कुछ तो उम्मीद रही होगी सरकार के इन निकायों से। लेकिन दोनों प्राधिकरणों ने अदालत में जो रुख दिखाया है और जिस तरह के तर्क रखे, वे इनकी लापरवाही, अक्षमता और पंगुता के परिचायक हैं। इन प्राधिकरणों ने अदालत को बताया कि वे बयालीस हजार अधूरे फ्लैटों का काम इसलिए पूरा नहीं करवा सकते क्योंकि इसके लिए उनके पास न तो संसाधन हैं और न ही जरूरी विशेषज्ञता। ज्यादा गंभीर बात तो यह है कि सब कुछ जानते-समझते समय रहते इन प्राधिकरणों ने आम्रपाली समूह के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया। इसकी वजह समूह का राजनीतिक रसूख बताई गई। जबकि दोनों प्राधिकरणों को समूह से पांच हजार करोड़ रुपए वसूलने हैं। प्राधिकरणों की ऐसी लाचारी चिंताजनक है। निजी बिल्डर इन्हीं सरकारी कमजोरियों का फायदा उठाते हैं और लोगों को ठगते हैं। यह हमारे भ्रष्ट तंत्र का एक उदाहरण है।

पिछले साल अक्तूबर में सुप्रीम कोर्ट ने आम्रपाली बिल्डर के खिलाफ सख्त कदम उठाते हुए समूह की संपत्तियां सील कर दी थीं। कंपनी के सारे दस्तावेज जांच अधिकारियों के हवाले करवा दिए थे और तीन निदेशकों को गिरफ्तार करवाया था। यह समूह लंबे समय से अपने राजनीतिक रसूख के बल पर जिस तरह से अदालती आदेशों की अवहेलना करता रहा, उससे तो लग रहा था कि बड़े बिल्डरों में कानून को लेकर भय नहीं है। अगर फ्लैट खरीदारों ने अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाया होता और उनके हित में सुप्रीम कोर्ट ने कड़े कदम नहीं उठाए होते तो ऐसे बिल्डर कब के भाग निकले होते। पिछले दो दशक में दिल्ली और इसके आसपास के इलाकों में बड़े बिल्डरों ने तेजी से अपना कारोबार फैलाया और लोगों को सस्ते फ्लैटों का सपना दिखाया। ज्यादातर बड़ी बिल्डर कंपनियों ने जमीन खरीदने से लेकर उस पर निर्माण तक में किसी नियम-कानून का पालन नहीं किया, न ही ग्राहकों को कभी कोई सही जानकारी दी। इस तरह सब जगह लोगों से पैसा तो लिया जाता रहा, लेकिन कहीं भी परियोजना पूरी नहीं की गई। नतीजा यह हुआ ग्राहक फंस गए और लंबे इंतजार के बाद भी फ्लैट नहीं मिले। सवाल यह है कि आम्रपाली के बयालीस हजार निवेशकों को मकान कैसे मिलेंगे? जिस तरह से इन दोनों प्राधिकरणों के संरक्षण में आम्रपाली व दूसरे बिल्डर समूह जनता का पैसा डकार गए, उसके लिए क्या इन दोनों निकायों को भी न्याय के कठघरे में नहीं लाया जाना चाहिए?

## कल्पमेधा

थोड़ा-सा झूठ भी मनुष्य का नाश कर देता है, जैसे दूध को एक बूंद जहर।
-महात्मा गांधी

# अस्तित्व बचाने की चुनौती

सतीश सिंह

**आज बीएसएनएल और एमटीएनएल ने ग्राहकों का भरोसा खो दिया है। इसका कारण निजी आपरेटरों की तुलना में ग्राहक सेवा में कमियां और खामियां, उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, श्रमिकों की समस्याएं और राजनीतिक हस्तक्षेप प्रमुख हैं। हकीकत यह है कि आज ये दोनों कंपनियां ग्राहकों को संतोषजनक सेवा नहीं दे पा रही हैं। उनके उत्पाद भी निजी टेलीकॉम कंपनियों के मुकाबले कमतर हैं।**

एक समय दूरसंचार सेवा बाजार में राज करने वाले भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड (एमटीएनएल) आज अकुशल प्रबंधन, ग्राहक सेवा की दयनीय स्थिति, उत्कृष्ट उत्पादों की कमी, राजनीतिक हस्तक्षेप आदि के कारण दिवालिया होने के कगार पर आ गए हैं। बीएसएनएल और एमटीएनएल को वित्तीय संकट से उबारने के लिए सरकार इन दोनों कंपनियों को तेरह हजार करोड़ रुपए का पैकेज देकर इन्हें संकट से उबारना चाहती है। इसमें 6365 करोड़ रुपए का पैकेज स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति (वीआरएस) के लिए और 6767 करोड़ रुपए का इक्विटी निवेश, 4 जी स्पेक्ट्रम का आवंटन और रियल एस्टेट का मुद्रीकरण शामिल है। बीएसएनएल और एमटीएनएल का राहत पैकेज अभी दूरसंचार विभाग के पास विचाराधीन है। इसके लिए दूरसंचार क्षेत्र से संबंधित फैसला लेने वाली सर्वोच्च संस्था डिजिटल संचार आयोग की अनुमति लेनी होगी। केंद्र सरकार का मानना है कि दूरसंचार रणनीतिक क्षेत्र है और इसमें सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति जरूरी है। बीएसएनएल और एमटीएनएल अपने परिचालन खर्च वहन करने के लिए बैंकों से कर्ज लेने में नाकाम रही है। लिहाजा, इस साल फरवरी में आयोग की बैठक में बीएसएनएल और एमटीएनएल को पटरी पर लाने के पैकेज पर चर्चा हुई थी।

दूरसंचार विभाग (डीओटी) ने बीएसएनएल को फिर से पटरी पर लाने की योजना बनाई है। इसके तहत 4 जी स्पेक्ट्रम का आवंटन और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना को लागू करने के लिए बांड के जरिए पूंजी जुटाने का प्रस्ताव है। सरकार बीएसएनएल की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए 4 जी स्पेक्ट्रम का आवंटन कर सकती है। कयास लगाए जा रहे हैं कि बीएसएनएल को बाजार कीमत पर 2100 मेगाहर्ट्ज बैंड में स्पेक्ट्रम आवंटित किया जा सकता है। इधर, दूरसंचार विभाग की भी बीएसएनएल में निवेश करने की योजना है। अगर यह योजना मूर्त रूप लेती है तो निवेश की राशि का इस्तेमाल बीएसएनएल बाजार निर्धारित कीमतों पर स्पेक्ट्रम खरीदने में कर सकता है।

बीएसएनएल का नेटवर्क देशभर में फैला है। आज भी निजी दूरसंचार ऑपरेटर अपना कारोबार बीएसएनएल और एमटीएनएल की मदद से ही आगे बढ़ा रहे हैं, क्योंकि उनका खुद का नेटवर्क बहुत कम है। यदि बीएसएनएल और एमटीएनएल अपने सेवा एवं उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाकर नेटवर्क का सही इस्तेमाल करें तो वे मौजूदा घाटे से बाहर निकल सकती हैं। यह सच्चाई है कि बिना बीएसएनएल और एमटीएनएल की मदद के निजी दूरसंचार ऑपरेटर बाजार में नहीं टिक सकते।

एमटीएनएल को अपने सर्विस लाइसेंस के नवीनीकरण के लिए तकरीबन ग्यारह हजार करोड़ रुपए की जरूरत है, लेकिन वित्तीय स्थिति खस्ताहाल होने के कारण वह दूरसंचार विभाग को इस राशि का भुगतान करने में असमर्थ है। लिहाजा, उसने दूरसंचार विभाग से इस राशि को माफ करने का आग्रह किया है। दूरसंचार विभाग के अनुसार एमटीएनएल को राहत देने के लिए हर संभव कोशिश की जा रही है। फिलहाल, एमटीएनएल की देनदारी बीस हजार करोड़ रुपए की है, जिसे उसने केंद्र सरकार की वैधानिक देयताओं के भुगतान के लिए लिया था। एमटीएनएल चाहता है कि सरकार इस कर्ज को मूलधन और ब्याज भुगतान के पूर्ण दायित्व के साथ संप्रभु गारंटी में तब्दील करे, ताकि उसे हर वर्ष दो हजार करोड़ रुपए का ब्याज भुगतान नहीं करना पड़े। एमटीएनएल 3 जी स्पेक्ट्रम का पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं कर पाया है, इसलिए वह इसे दूरसंचार विभाग को वापस करना चाहता है। इससे उसे साढ़े तीन हजार करोड़ रुपए मिलने की संभावना है, जिसका इस्तेमाल एमटीएनएल अपने कारोबार को बढ़ाने में कर सकता है।

बीएसएनएल और एमटीएनएल का कर्ज निजी क्षेत्र की इकाइयों की तुलना में बहुत ही कम है और उनके पास ढेर सारी अचल संपत्तियां हैं। दोनों कंपनियों के पास देशभर में करीब 7500 अचल परिसंपत्तियां हैं, जिनका मूल्य लगभग सत्तर हजार करोड़ रुपए बैठता है। कंपनी का प्रस्ताव जमीनों को पट्टे पर देकर राजस्व अर्जित करना है। इसलिये, बीएसएनएल और एमटीएनएल देशभर में अपनी जमीन को सार्वजनिक क्षेत्र की दूसरी इकाइयों को किराए पर देने की योजना बना रहे हैं। केंद्र सरकार को दिए गए पुनरुद्धार आवेदन

में दोनों कंपनियों ने 4 जी सेवाओं की मांग की है, ताकि वे ग्राहकों को बेहतर विकल्प और सेवा मुहैया करा सकें। विशेषज्ञों का कहना है कि दोनों कंपनियों को संकट से उबारने का एक उपाय विलय भी है। इससे दोनों कंपनियां पटरी पर आ सकती हैं। एमटीएनएल के दिल्ली और मुंबई मंडल का एकीकरण करना सबसे आसान और बेहतर विकल्प है। दोनों कंपनियों के साथ आने से एक मजबूत दूरसंचार इकाई का निर्माण होगा और संकट दूर होने के साथ कारोबार भी बढ़ेगा।

आज बीएसएनएल और एमटीएनएल ने ग्राहकों का भरोसा खो दिया है। इसका कारण निजी आपरेटरों की तुलना में ग्राहक सेवा में कमियां और खामियां, उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, श्रमिकों की समस्याएं और राजनीतिक हस्तक्षेप प्रमुख हैं। हकीकत यह है कि आज ये दोनों कंपनियां ग्राहकों को संतोषजनक सेवा नहीं दे पा रही हैं। उनके उत्पाद भी निजी टेलीकॉम कंपनियों के मुकाबले कमतर हैं। ऑनलाइन सेवा देने के मामले में भी ये फिसड्डी रही हैं। यही कारण है कि बड़ी संख्या में उनके ग्राहक निजी कंपनियों का दामन थाम रहे हैं। राजस्व बढ़ाने के लिए बीएसएनएल और एमटीएनएल ब्रॉडबैंड और फाइबर टु होम का विस्तार करने की जरूरत थी। लेकिन एसा हो नहीं पाया। इस कारोबार से हर साल हजारों करोड़ रुपए का मुनाफा हो सकता था, लेकिन दोनों ही कंपनियों ने योजनबद्ध तरीके से काम नहीं किया और इसी का नतीजा रहा कि घाटा बढ़ता गया।

दोनों कंपनियों की इस वक्त सबसे बड़ी समस्या कर्मचारियों की संख्या है। इन कर्मचारियों के वेतन, भत्तों पर हर महीने मोटी रकम जा रही है, जबकि अमद हो नहीं रही। एमटीएनएल के पास इस तेईस हजार से ज्यादा कर्मचारी हैं। एमटीएनएल की कुल लागत में कर्मचारियों पर आने वाला खर्च परिचालन से मिलने वाले 572.83 करोड़ रुपए राजस्व की तुलना में 29 फीसद ज्यादा है। अठारह साल में पहली बार एमटीएनएल अपने कमर्चारियों के दो महीने के वेतन का भुगतान विगत महीनों में नहीं कर सका। इसका पर चौदह हजार करोड़ रुपए है, जबकि दूरसंचार क्षेत्र का कुल कर्ज छह लाख करोड़ रुपए है। यही समस्या बीएसएनएल की की है, कम कमाई और ज्यादा खर्च। उसकी कमाई का भी सबसे ज्यादा हिस्सा कर्मचारियों के वेतन-भत्तों में निकल जा रहा है। ऐसे में सवाल उठता है कि कारोबार विस्तार और नए उत्पादों के लिए पैसा कहां से आए।

इसमें दो राय नहीं है कि दोनों कंपनियों के पास प्रशिक्षित कर्मचारी, देशव्यापी नेटवर्क, मजबूत आधारभूत संरचना, तकनीकी जानकारी आदि संसाधन उपलब्ध हैं। बावजूद इसके, इन दोनों का कंगाली के दरवाजे पर पहुंचना चिंता का विषय है। सच कहा जाए तो इन दोनों संस्थानों की खस्ताहाल स्थिति के लिए सीधे तौर पर दोनों संस्थानों के कमर्चारियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। अगर आज बीएसएनएल और एमटीएनएल को राहत पैकेज देने की बात कही जा रही है तो कहीं न कहीं सरकार भी इसके लिए दोषी है। सरकारी नीतियों की वजह से ही दोनों कंपनियां डूबने के कगार पर आ गई हैं और निजी दूरसंचार ऑपरेटर चांदी काट रहे हैं।

# संप्रेषण के तार

हेमन्त कुमार पारीक

मित्र की बुजुर्ग मां गांव से आई हुई थीं। मित्र ने आम दिनों की तरह बुलाया तो मुझे उनकी मां से मिलने का मौका मिला। उनकी उम्र तकरीबन पचहत्तर वर्ष होगी। इतनी उम्र में भी उनका चेहरा सलवट से मुक्त चमकता-दमकता था और वे पूरी तरह स्वस्थ दिख रही थीं। उनके दांत चमक रहे थे और आंखें बड़ी-बड़ी। मुझे देखते ही वे बोली- 'चश्मा कब से चढ़ा है?' मैंने कहा- 'करीब बीस वर्ष हो गए। लेकिन आपको तो अभी भी साफ दिखाई देता है। चश्मा नहीं है। आपकी उम्र की अधिकतर महिलाएं बिना चश्मा के देख ही नहीं पातीं।' उन्होंने कहा- 'बचपन में माता-पिता ने ध्यान रखा। हर्बल का रस आखों में डालते थे पिताजी। देशी दवाएं होती थीं और अम्मा हर महीने सरसों का तेल कान में डालती रहीं। परंपरा थी हमारे परिवार में, इसलिए आजतक न तो कभी कान में दर्द हुआ और न आंखें खराब हुईं।' मैंने सवाल किया कि दांतों के लिए क्या करती थीं तो बोलीं- 'शुरू में नीम की दातुन करते रहे। नीम बड़ा गुणकारी होता है। हमारे यहां नीम के तीन-तीन झाड़ है। दद्दू ने लगाए थे। एक छोटा-सा बगीचा भी है, जिसमें सभी कुछ है। आंवला भी है, संतरा, नीबू, सीताफल वगैरह।' आंवले की मार्फत शायद वे अपने बालों की बात करना चाह रही थीं, जिनकी तारीफ करना मैं भूल गया था। उन्होंने कहा- 'हर्बल में स्वस्थ रहने की चाभी है। अभी भी बहुत कुछ है जो हम भूल गए हैं। वैसे हर्र-बहेड़ा, आंवला तो ज्यादातर लोग जानते हैं।' मैंने कहा कि ये हर्बल मैंने सुने हैं। आंवले की उपयोगिता तो सभी जानते हैं, पर हर्र-बहेड़े की उपयोगिता बहुत कम लोगों को पता होगी।'

**दुनिया मेरे आगे**

उन्होंने कहा- 'एक बार हमारे गांव में आकर देखिए। गांव की आबोहवा में एक विशेष ऊर्जा मिलती है। जो चीजें वहां आसानी से उपलब्ध हैं, यहां बड़ी जद्दोजहद के बाद मिलती हैं। इसलिए शहर में दो दिन से ज्यादा रुकने का मन नहीं करता। ये धूल-धक्कड़, भीड़भाड़ और दिनभर भागता इंसान! वहां सुकून है। आपस में भाईचारा है। यहां तो आदमी पड़ोसी को भी नहीं पहचानता। शाम को घर में घुसा तो फिर सुबह ही बाहर निकलता दिखता है। हमारे घर में गाय, भैंस, तोता-मैना, कुत्ते आदि सब कुछ हैं। शाम को आम और इमली के पेड़ों पर चिड़ियों का चहचहाना इतना कि बगल वाले की आवाज सुनाई न दे। मगर अच्छा लगता है। ये पक्षी भी आपस में बातें करते हैं। उनकी भी अपनी भाषा होती है।' मैंने कहा- 'हां, तोता-मैना को लेकर कई जातक कथाएं गढ़ी गई हैं। प्राथमिक कक्षा की किताबों में मिलती हैं, पर ये रूपक बन कर रह गई हैं। बच्चों तक सीमित रहीं। हो सकता है कि ऐसा होता हो। इंसान जानवरों की भाषा समझता हो। विज्ञान कहता है कि पशु-पक्षियों की भाषा हमारी शार्टहैंड भाषा से भी संक्षिप्त होती है। वे भी अपने सुख-दुख की बातें करते हैं।'

वे बोली कि आश्चर्य होता है कि हम उनकी भाषा नहीं समझ पाते, पर वे समझते हैं। हमारे घर में एक कुतिया ब्लैकी है। उसे इसी नाम से पुकारते हैं। बिना किसी ट्रेनिंग के वह सब समझती है। बस कहने भर की देर है। सामने खाना रखा रहता है, पर जब तक उसे खाने को नहीं कहते, वह खाने की तरफ देखती तक नहीं। ऐसे माहौल से जब मैं शहर आती हूं तो बड़ा अजीब-सा लगता है। वहां किसी के घर मेहमान आता है तो सारा गांव इकट्ठा हो जाता है और निमंत्रणों का तांता लग जाता है। शाम के समय चौपालों पर लोग झुंडों में बतियाते दिखते हैं और रात में थकी-हारी औरतें ढोलक पर भजन गाती मिल जाती हैं। संप्रेषण के तार हैं।' विश्वास नहीं होता अब। गुजरे जमाने की बाते हैं। फिर भी उन्हें देख कर यह लगता तो है।

आज स्थिति यह है कि ट्रेन के कूपे में बैठा आदमी यात्रा समाप्त होने तक एक दूसरे से एक शब्द भी नहीं बोल पाता। हाथ में मोबाइल होता है और दूर कहीं बात चलती रहती है, पर बगल में बैठे आदमी से दो मीठे बोल भी नहीं बोल सकता। लेकिन आदमी के सामाजिक होने की जरूरी शर्त है कि वह आसपास रहने वालों से, चाहे जड़ हो या चेतन, अपने आपको व्यक्त करता रहे। यह संप्रेषण ही उसके अस्तित्व की चाभी है। जैसा कि ऊपर कहा गया है आदमी मूक प्राणियों से भी बतियाता है। वे भी प्यार की भाषा समझते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में हम मंदिर में ईश्वर की अमूर्त अवधारणा से मन की बात करते हैं। उसके सामने याचक की तरह मूक खड़े होते हैं। हमें प्रकृति को धन्यवाद देना चाहिए कि उसने इन मूक प्राणियों को मोबाइल जैसी इंद्रियों से सुसज्जित नहीं किया। कल्पना करता हूं कि तब क्या होता!

# नतीजों का दबाव

दसवीं और बारहवीं के परीक्षा परिणामों में प्राप्तांकों का प्रतिशत हर नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। क्या यह बुद्धिमता (आइक्यू) के मापन का पैमाना बन गया है? क्या लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त है? क्या महज अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य रह गया है? कहीं अंक और ग्रेड के चक्कर में हम बच्चों से उनका बचपन तो नही छीन रहे या उन्हें रट्टू तोता तो नहीं बना रहे? यह भी गौरतलब है कि अधिकांश अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की हिंदी अच्छी नहीं है।

आज जरूरत है शिक्षा को अंकों की औपचारिकता से ऊपर उठा कर रोजगारमूलक और जीवन में व्यावहारिक रूप से उपयोगी बनाने की। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अर्जित शिक्षा के अनुप्रयोग सिखाएं, तभी शिक्षा की सार्थकता है। प्राचीनतम गुरुकुल प्रणाली में शारीरिक, नैतिक, व्यावहारिक, बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और कलात्मक सभी पहलुओं का समावेश रहता था, जिससे विद्यार्थी भावी जीवन की कठिनाइयों से जूझने के लिए तैयार हो जाता था। जबकि वर्तमान में बच्चे थोड़ी-सी भी कठिनाई आने पर खुद को असहज और असुरक्षित महसूस करने लगते हैं और आत्महत्या जैसे कायराना कदम को ही सभी समस्याओं का एकमात्र हल समझ बैठते हैं।

● *मोहित सोनी, कुक्षी, जिला-धार*

## अंक ही सब कुछ नहीं

कुछ ही दिन पहले बोर्ड का परिणाम घोषित हुआ। नतीजे देख कर कुछ छात्र बहुत खुश दिखाई दे रहे हैं, लेकिन कुछ काफी निराश भी हैं। ऐसे में कोई कमी रह भी गई है तो कोई परेशानी की बात नहीं है वे उन्हें आगे की परीक्षाओं में सुधारने का प्रयास करें। यह उनकी अंतिम परीक्षा नहीं है। किसी भी छात्र की परीक्षा का परिणाम उसकी क्षमताओं का परिणाम नहीं होता। इसलिए हमें कभी भी छात्रों पर उनके परिणाम को लेकर मानसिक दवाब नहीं बनाना चाहिए। हमें उनको, उनके बेहतर भविष्य के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यही हमारे समाज और राष्ट्र के हित में है।

● *आकाश मलिक, मुरादाबाद*

## आरक्षण का सवाल

कर्नाटक सरकार को सुप्रीम कोर्ट से हरी झंडी मिल गई है। अब वहां अनुसूचित जाति एवं जनजाति के कामगारों को प्रोन्नति में आरक्षण दिया जा सकेगा। कर्नाटक सरकार ने इसके लिए सुप्रीम कोर्ट को दलित जातियों की स्थिति को बताने वाल सर्वे का डाटा मुहैया कराया। इस डाटा को तैयार करने के लिए राज्य सरकार ने रतना प्रभा कमेटी का गठन किया गया था। अब कर्नाटक की देखा-देखी अन्य राज्य भी ऐसे सर्वे करवा सकते हैं। आरक्षण इस मुल्क में एक राजनीतिक मसला बन चुका है। जो लोग इसका विरोध करते हैं, उन्हें भी पता है जिस वजह से इसे हमारे संविधान निर्माताओं ने प्रावधान किया था, वह वजह आज भी मौजूद है। आलोचक कहते हैं कि इस व्यवस्था की समय-समय पर समीक्षा होनी चाहिए थी। ठीक है, वह काम नहीं हुआ। मगर क्या समाज से ऊंच नीच का भेद खत्म हुआ? आज भी इक्कीसवीं सदी में दलित दूल्हों को घोड़ी चढ़ने नहीं दिया जाता। हाल में, उत्तराखंड के एक इक्कीस वर्षीय दलित युवक को इस लिए पीट पीट कर मार दिया गया क्योंकि उसने बड़ी जातियों के साथ विवाह समारोह में एक साथ खाना खाने की गुस्ताखी कर दी थी। अगर यही स्थिति रहेगी तो आरक्षण व्यवस्था को इस देश से कभी खत्म नहीं किया जा सकेगा।

● *जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर*

## नेताओं की बदजुबानी

गांधीजी आजादी के लिए सत्य, अहिंसा एवं उचित कर्म का प्रयोग सबसे बेहतर मानते थे। उनका कहना था कि हिंसा के बल पर तो हमारा देश कुछ ही दिनों में आजाद हो जाएगा, परंतु हम अपनी प्राचीन महानताओं को विश्व में साबित नहीं कर पाएंगें। इसी गरिमा के कारण हमारा देश इतने कष्ट सहने के बाद आजाद हुआ। परंतु क्या हम आज उस गरिमा और कष्टों को भूल चुके हैं। राजनीति कभी खराब नहीं होती है। यह तो समाज के लिए उचित निर्णय लेने, उसे पालन करवाने, जनता को अवसर प्रदान करवाने और उनके दुखों को दूर करने वाली एक विशाल आदरपूर्ण संस्था है। परंतु नेताओं की अपनी आपसी बदजुबानी के कारण लोगों की राजनीति तथा राजनीतिज्ञों पर से विश्वास उठने लगा है। चुनाव प्रचार में पक्ष-विपक्ष आपस में डायनासोर, शुतुरमुर्ग की बात कर रहे हैं। इसके अलावा विपक्ष ने तो सत्ता पक्ष को गंदी नाली का कीड़ा तक कह डाला।

सवाल है कि नेताओं के इन अमर्यादित बयानों से भावी पीढ़ियां क्या सीखेंगी। इन बदजुबानियों से समाज का कोई तबका अछूता नहीं रह गया है। कहीं भी राजनीतिक चर्चा होती है तो लोग आपस में ही फूट पड़ते हैं। ये नेता तो अपशब्द बोलने के बाद भी कोई उचित माफी नहीं मांगते। राजनीति जैसी पवित्र साधन को ये लोग आपसी भड़ास निकालने का जरिया बना लिया है। आज समाज में फैल रही कुरुतियों, बदजुबानियों और हिंसात्मक गतिविधियों को रोकना अनिवार्य है और ये कार्य सिर्फ आम-नागरिक ही कर सकते हैं।

● *सुबोध कुमार साहू, बेगूसराय*

**किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश**

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com